श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रामायण स्तोत्र (9.11)

धरा हुई धन्य,व्याप्त हुआ आह्लाद
नारायण अवतारों पर,ब्रह्मा नारद संवाद

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
नवमः(स्) स्कन्धः
अथैकादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

भगवानात्मनाऽऽत्मानं(म्), राम उत्तमकल्पकैः ।
सर्वदेवमयं(न्) देव- मीज आचार्यवान् मखैः ॥ 1॥

भगवानात्+ मनाऽऽत्+ मानं(म्)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित्! भगवान् श्रीराम ने गुरु वसिष्ठजी को अपना आचार्य बनाकर उत्तम सामग्रियों से युक्त यज्ञों के द्वारा अपने आप ही अपने सर्वदेवस्वरूप स्वयंप्रकाश आत्मा का यजन किया।

होत्रेऽददाद् दिशं(म्) प्राचीं(म्), ब्रह्मणे दक्षिणां(म्) प्रभुः ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं(ञ्) च, उदीचीं(म्) सामगाय सः ॥ 2॥

उन्होंने होता को पूर्व दिशा, ब्रह्मा को दक्षिण, अध्वर्यु को पश्चिम और उद्गाता को उत्तर दिशा दे दी।

आचार्याय ददौ शेषां(यँ), यावती भूस्तदन्तरा ।

मन्यमान इदं(ङ्) कृत्स्नं(म्), ब्राह्मणोऽर्हति निः(स्)स्पृहः ॥ 3॥

भूस्त+ दन्तरा

उनके बीच में जितनी भूमि बच रही थी, वह उन्होंने आचार्य को दे दी। उनका यह निश्चय था कि सम्पूर्ण भूमण्डल का एकमात्र अधिकारी निःस्पृह ब्राह्मण ही है।

इत्ययं(न्) तदलं(ङ्)कार- वासोभ्यामवशेषितः ।

तथा राज्ञ्यपि वैदेही, सौमं(ङ्)गल्यावशेषिता ॥ 4॥

वासोभ्या+ मवशेषितः, सौमं(ङ्)गल्या+ वशेषिता

इस प्रकार सारे भूमण्डल का दान करके उन्होंने अपने शरीर के वस्त्र और अलङ्कार ही अपने पास रखे । इसी प्रकार महारानी सीताजी के पास भी केवल माङ्गलिक वस्त्र और आभूषण ही बच रहे।

ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य, वात्सल्यं(वँ) वीक्ष्य सं(म्)स्तुतम् ।

प्रीताः(ख्) क्लिन्नधियस्तस्मै, प्रत्यर्प्येदं(म्) बभाषिरे ॥ 5॥

ब्रह्मण्यदे+ वस्य, क्लिन्+ नधियस्+ तस्मै, प्रत्यर्+ प्येदं(म्)

जब आचार्य आदि ब्रह्मणों ने देखा कि भगवान श्रीराम ब्राह्मणों को ही अपना इष्टदेव मानते हैं, उनके हृदय ब्राह्मणों के प्रति अनन्त स्नेह है, तब उनका हृदय प्रेम से द्रवित हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर सारी पृथ्वी भगवान को लौटा दी और कहा।

अप्रत्तं(न्) नस्त्वया किं(न्) नु, भगवन् भुवनेश्वर ।

यन्नोऽन्तर्हृदयं(वँ) विश्य, तमो हं(म्)सि स्वरोचिषा ॥ 6॥

यन्नोऽन्तर्+ हृदयं(वँ)

'प्रभो ! आप सब लोकों के एकमात्र स्वामी हैं। आप तो हमारे हृदय के भीतर रहकर अपनी ज्योति से अज्ञानान्धकार का नाश कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में भला, आपने हमें क्या नहीं दे रखा है।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय, रामायाकुण्ठमेधसे ।

उत्तमश्लोकधुर्याय, न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥ 7॥

उत्तमश्लोक+ धुर्याय, न्यस्तदण्डार्+ पिताङ्घ्रये

आपका ज्ञान अनन्त है। पवित्र कीर्तिवाले पुरुषों में आप सर्वश्रेष्ठ हैं। उन महात्माओं को, जो किसी को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुंचाते, आपने अपने चरणकमल दे रखे हैं। ऐसा होने पर भी आप ब्राह्मणों को अपना इष्टदेव मानते हैं। भगवन! आपके इस रामरूप को हम नमस्कार करते हैं।

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्- गूढो रात्र्यामलक्षितः ।

चरन् वाचोऽशृणोद् रामो, भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ 8॥

परीक्षित! एक बार अपनी प्रजा की स्थिति जानने के लिये भगवान श्रीरामजी रात के समय छिपकर बिना किसी को बतलाये घूम रहे थे। उस समय उन्होंने किसी की यह बात सुनी। वह अपनी पत्नी से कह रहा था।

नाहं(म्) बिभर्मि त्वां(न्) दुष्टा- मसतीं(म्) परवेश्मगाम् ।

स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां(म्), रामो नाहं(म्) भजे पुनः ॥ 9॥

'अरी ! तू दुष्ट और कुलटा है तू पराये घर में रह आयी है। स्त्री-लोभी राम भले ही सीता को रख लें, परन्तु मैं तुझे फिर नहीं रख सकता'।

इति लोकाद् बहुमुखाद्, दुराराध्यादसं(वँ)विदः ।

पत्या भीतेन सा त्यक्ता, प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ 10॥

दुराराध्या+ दसं(वँ)विदः

सचमुच सब लोगों को प्रसन्न रखना टेढ़ी खीर है। क्योंकि मूर्खों की तो कमी नहीं है। जब भगवान श्रीराम ने बहुतों के मुँह से ऐसी बात सुनी तो वे लोकापवाद से कुछ भयभीत से हो गये। उन्होंने श्रीसीताजी का परित्याग कर दिया और वे वाल्मीकि मुनि के आश्रम में रहने लगीं।

अन्तर्वत्न्यागते काले, यमौ सा सुषुवे सुतौ ।

कुशो लव इति ख्यातौ, तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥ 11॥

अन्तर्+वत्न्या+ गते

सीताजी उस समय गर्भवती थीं। समय आने पर उन्होंने एक साथ ही दो पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हुए-कुश और लव । वाल्मीकि मुनि ने उनके जातकर्मादि संस्कार किये।

अं(ङ्)गदश्चित्रकेतुश्च, लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ।

तक्षः(फ्) पुष्कल इत्यास्तां(म्), भरतस्य महीपते ॥ 12॥

अं(ङ्)गदश् + चित्रके+ तुश्च, लक्ष्मणस् + यात्मजौ

लक्ष्मणजी के दो पुत्र हुए- अङ्गद और चित्रकेतु। परीक्षित ! इसी प्रकार भरतजी के भी दो ही पुत्र थे- तक्ष और पुष्कल।

सुबाहुः(श्) श्रुतसेनश्च, शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ।

गन्धर्वान् कोटिशो जघ्ने, भरतो विजये दिशाम् ॥ 13॥

तथा शत्रुघ्न के भी दो पुत्र हुए- सुबाहु और श्रुतसेन। भरतजी ने दिग्विजय में करोड़ों गन्धर्वों का संहार किया।

तदीयं(न्) धनमानीय, सर्वं(म्) राज्ञे न्यवेदयत् ।

शत्रुघ्नश्च मधोः(फ्) पुत्रं(म्), लवणं(न्) नाम राक्षसम् ।

हत्वा मधुवने चक्रे, मथुरां(न्) नाम वै पुरीम् ॥ 14॥

उन्होंने उनका सब धन लाकर अपने बड़े भाई भगवान श्रीराम को सेवा में निवेदन किया। शत्रुघ्न जी ने मधुवन में मधु के पुत्र लवण नामक राक्षस को मारकर यहाँ मथुरा नाम की पुरी बसायी।

मुनौ निक्षिप्य तनयौ, सीता भर्त्रा विवासिता ।

ध्यायन्ती रामचरणौ, विवरं(म्) प्रविवेश ह ॥ 15॥

भगवान श्रीराम के द्वारा निर्वासित सीताजी ने अपने पुत्रों को वाल्मीकि जी के हाथों में सौंप दिया और भगवान श्रीराम के चरणकमलों का ध्यान करती हुई वे पृथ्वीदेवी के लोक में चली गयीं।

तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो, रुन्धन्नपि धिया शुचः ।

स्मरं(म्)स्तस्या गुणां(म्)स्तां(म्)स्तान्- नाशक्नोद्- रोद्धुमीश्वरः ॥ 16॥

यह समाचार सुनकर भगवान श्रीराम ने अपने शोकावेश को बुद्धि के द्वारा रोकना चाहा, परन्तु परम समर्थ होने पर भी वे उसे रोक न सके। क्योंकि उन्हें जानकीजी के पवित्र गुण बार-बार स्मरण हो आया करते थे।

स्त्रीपुं(म्)प्रसं(ङ्)ग एतादृक्- सर्वत्र त्रासमावहः ।

अपीश्वराणां(ङ्) किमुत, ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ 17॥

परीक्षित ! यह स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध सब कहीं इसी प्रकार दुःख का कारण है। यह बात बड़े-बड़े समर्थ लोगों के विषय में भी ऐसी ही है, फिर गृहासक्त विषयी पुरुष के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है।

तत ऊर्ध्वं(म्) ब्रह्मचर्यं(न्), धारयन्नजुहोत् प्रभुः ।

त्रयोदशाब्दसाहस्र- मग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ 18॥

त्रयोदशाब्द+ साहस्र, मग्निहो+ त्रमखण्डितम्

इसके बाद भगवान् श्रीराम ने ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अखण्ड रूप से अग्निहोत्र किया।

स्मरतां(म्) हृदि विन्यस्य, विद्धं(न्) दण्डककण्टकैः ।

स्वपादपल्लवं(म्) राम, आत्मज्योतिरगात् ततः ॥ 19॥

तदनन्तर अपना स्मरण करनेवाले भक्तों के हृदय में अपने उन चरणकमलों को स्थापित करके, जो दण्डक वन के काँटों से बिंध गये थे, अपने स्वयंप्रकाश परम ज्योतिर्मय धाम में चले गये।

नेदं(यँ) यशो रघुपतेः(स्) सुरयाच्ञयाऽऽत्त-

लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ।

रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः(ख्)

किं(न्) तस्य शत्रुहनने कपयः(स्) सहायाः ॥ 20॥

सुरयाच्+ ञ्याऽऽत्त, लीलातनो+ रधिकसाम्+ यविमुक्तधाम्नः, जलधिबन्+ धनमस्त्र+ पूगैः(ख्)

परीक्षित! भगवान के समान प्रतापशाली और कोई नहीं है, फिर उनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है। उन्होंने देवताओं की प्रार्थना से ही यह लीला-विग्रह धारण किया था। ऐसी स्थिति में रघुवंशशिरोमणि भगवान श्रीराम के लिये यह कोई बड़े गौरव की बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र-शस्त्रों से राक्षसों को मार डाला या समुद्र पर पुल बाँध दिया। भला, उन्हें शत्रुओं को मारने के लिये बंदरों की सहायता की भी आवश्यकता थी क्या ? यह सब उनकी लीला ही है।

यस्यामलं(न्) नृपसदस्सु यशोऽधुनापि

गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।

तं(न्) नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-

पादाम्बुजं(म्) रघुपतिं(म्) शरणं(म्) प्रपद्ये ॥ 21॥

गायन्त्य+ घघ्नमृषयो, दिगिभेन्+ द्रपट्टम्, नाकपा+ लवसुपा+ लकिरीटजुष्ट

भगवान श्रीराम का निर्मल यश समस्त पापों को नष्ट कर देनेवाला है। वह इतना फैल गया है कि दिग्गजों का श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलता से चमक उठता है। आज भी बड़े-बड़े ऋषि महर्षि राजाओं की सभा में उसका गान करते रहते हैं।स्वर्ग के देवता और पृथ्वी के नरपति अपने कमनीय किरीटों से उनके चरणकमलों की सेवा करते रहते हैं। मैं उन्हीं रघुवंशशिरोमणि भगवान श्रीरामचन्द्र की शरण ग्रहण करता हूँ।

स यैः(स्) स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा, सं(वँ)विष्टोऽनुगतोऽपि वा ।

कोसलास्ते ययुः(स्) स्थानं(यँ), यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ 22॥

स्पृष्टोऽ+ भिदृष्टो, सं(वँ)विष्टोऽ+ नुगतोऽपि

जिन्होंने भगवान श्रीराम का दर्शन और स्पर्श किया, उनका सहवास अथवा अनुगमन किया- वे सब-के-सब तथा कोसल देश के निवासी भी उसी लोक में गये, जहाँ बड़े-बड़े योगी योग साधना के द्वारा जाते हैं।

पुरुषो रामचरितं(म्), श्रवणैरुपधारयन् ।

आनृशं(म्)स्यपरो राजन्, कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ 23॥

कर्मबन्धैर्+ विमुच्यते

जो पुरुष अपने कानों से भगवान श्रीराम का चरित्र सुनता है- उसे सरलता, कोमलता आदि गुणों की प्राप्ति होती है। परीक्षित्! केवल इतना ही नहीं, वह समस्त कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

राजोवाच

कथं(म्) स भगवान् रामो, भ्रातॄन् वा स्वयमात्मनः ।

तस्मिन् वा तेऽन्ववर्तन्त, प्रजाः(फ्) पौराश्च ईश्वरे ॥ 24॥

राजा परीक्षित ने पूछा- भगवान श्रीराम स्वयं अपने भाइयों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करते थे ? तथा भरत आदि भाई, प्रजाजन और अयोध्यावासी भगवान श्रीराम के प्रति कैसा बर्ताव करते थे ?

श्रीशुक उवाच

अथादिशद् दिग्विजये, भ्रातॄं(म्)स्त्रिभुवनेश्वरः ।

आत्मानं(न्) दर्शयन् स्वानां(म्), पुरीमैक्षत सानुगः ॥ 25॥

भ्रातॄं(म्)स् + त्रिभुवनेश्वरः

श्रीशुकदेवजी कहते है-त्रिभुवनपति महाराज श्रीराम ने राजसिंहासन स्वीकार करने के बाद अपने भाइयों को दिग्विजय की आज्ञा दी और स्वयं अपने निजजनों को दर्शन देते हुए अपने अनुचरों के साथ वे पुरी की देख-रेख करने लगे।

आसिक्तमार्गां(ङ्) गन्धोदैः(ख्), करिणां(म्) मदशीकरैः ।

स्वामिनं(म्) प्राप्तमालोक्य, मत्तां(वँ) वा सुतरामिव ॥ 26॥

उस समय अयोध्यापुरी के मार्ग सुगन्धित जल और हाथियों के मदकणों से सिंचे रहते। ऐसा जान पड़ता, मानो यह नगरी अपने स्वामी भगवान श्रीराम को देखकर अत्यन्त मतवाली हो रही है । 26 ॥

प्रासादगोपुरसभा- चैत्यदेवगृहादिषु ।

विन्यस्तहेमकलशैः(फ्), पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥ 27॥

प्रासाद+ गोपुरसभा, चैत्यदे+ वगृहादिषु, विन्यस्त+ हेमकलशैः(फ्),

उसके महल, फाटक, सभाभवन, विहार और देवालय आदि में सुवर्ण के कलश रखे हुऐ थे और स्थान-स्थान पर पताकाएँ फहरा रही थीं।

पूगैः(स्) सवृन्तै रम्भाभिः(फ्), पट्टिकाभिः(स्) सुवाससाम् ।

आदर्शैरं(म्)शुकैः(स्) स्रग्भिः(ख्), कृतकौतुकतोरणाम् ॥ 28॥

आदर्शै+ रं(म्)शुकैः(स्),कृतकौ+ तुकतोरणाम्

वह डंठल समेत सुपारी, केले के खंभे और सुन्दर वस्त्रों के पट्टों से सजायी हुई थी। दर्पण, वस्त्र और पुष्पमालाओं से तथा मांगलिक चित्रकारियों और बंदनवारों से सारी नगरी जगमगा रही थी।

तमुपेयुस्तत्र तत्र, पौरा अर्हणपाणयः ।

आशिषो युयुजुर्देव, पाहीमां(म्) प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥ 29॥

तमुपे+ युस्तत्र, युयुजुर्+ देव,

नगरवासी अपने हाथों में तरह-तरह की भेंट लेकर भगवान के पास आते और उनसे प्रार्थना करते कि 'देव! पहले आपने ही वराह रूप से पृथ्वी का उद्धार किया था; अब आप ही इसका पालन कीजिये।

ततः(फ्) प्रजा वीक्ष्य पतिं(ञ्) चिरागतं(न्),

दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः(स्) स्त्रियो नराः ।

आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचन-

मतृप्तनेत्राः(ख्) कुसुमैरवाकिरन् ॥ 30॥

दिदृक्षयोत् + सृष्टगृहाः(स्), हर्म्याण्य+ रविन्दलोचन

परीक्षित! उस समय जब प्रजा को मालूम होता कि बहुत दिनों के बाद भगवान श्रीरामजी इधर पधारे हैं, तब सभी स्त्री-पुरुष उनके दर्शन की लालसा से घर-द्वार छोड़कर दौड़ पड़ते। वे ऊँची-ऊँची अटारियों पर चढ़ जाते और अतृप्त नेत्रों से कमलनयन भगवान को देखते हुए उनपर पुष्पों की वर्षा करते।

अथ प्रविष्टः(स्) स्वगृहं(ञ्), जुष्टं(म्) स्वैः(फ्) पूर्वराजभिः ।

अनन्ताखिलकोषाढ्य- मनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ 31॥

अनन्ता+ खिलकोषाढ्य- मनर्घ्यो+ रुपरिच्छदम्

इस प्रकार प्रजा का निरीक्षण करके भगवान् फिर अपने महलों में आ जाते । उनके वे महल पूर्ववर्ती राजाओं के द्वारा सेवित थे। उनमें इतने बड़े-बड़े सब प्रकार के खजाने थे, जो कभी समाप्त नहीं होते थे। वे बड़ी-बड़ी बहुमूल्य बहुत-सी सामग्रियों से सुसज्जित थे।

विद्रुमोदुम्बरद्वारैर् -वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः ।

स्थलैर्मारकतैः(स्) स्वच्छैर्- भातस्फटिकभित्तिभिः ॥ 32॥

विद्रुमो+ दुम्बरद् + वारैर्, वैदूर्यस्+ तम्भपङ्क्तिभिः, भातस् + फटिक+ भित्तिभिः

महलों के द्वार तथा देहलियाँ मूँगे की बनी हुई थीं। उनमें जो खंभे थे, वे वैदूर्य मणि के थे। मरकत मणि के बड़े सुन्दर सुन्दर फर्श थे तथा स्फटिक मणि की दीवारें चमकती रहती थीं।

चित्रस्रग्भिः(फ्) पट्टिकाभिर्- वासोमणिगणां(म्)शुकैः ।

मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः(ख्), कान्तकामोपपत्तिभिः ॥ 33॥

चित्रस्+ रग्भिः(फ्), वासो+ मणिगणां(म्)शुकैः,

मुक्ताफलैश्+ चिदुल्लासैः(ख्), कान्तकामो+ पपत्तिभिः

धूपदीपैः(स्) सुरभिभिर्- मण्डितं(म्) पुष्पमण्डनैः ।

स्त्रीपुम्भिः(स्) सुरसं(ङ्)काशैर्- जुष्टं(म्) भूषणभूषणैः ॥ 34॥

स्त्री+ पुम्भिः(स्)

रंग-बिरंगी मालाओं, पताकाओं,मणियों की चमक, शुद्ध चेतन के समान उज्ज्वल मोती, सुन्दर-सुन्दर भोग सामग्री, सुगन्धित धूप-दीप तथा फूलों के गहनों से वे महल खूब हुए थे। आभूषणों को भी भूषित करनेवाले देवताओं के समान स्त्री-पुरुष उसकी सेवा में लगे रहते थे।

तस्मिन् स भगवान् रामः(स्), स्निग्धया प्रिययेष्टया ।

रेमे स्वारामधीराणा- मृषभः(स्) सीतया किल ॥ 35॥

परीक्षित ! भगवान श्रीरामजी आत्माराम जितेन्द्रिय पुरुषों के शिरोमणि थे। उसी महल में वे अपनी प्राणप्रिया प्रेममयी पत्नी श्रीसीताजी के साथ विहार करते थे।

बुभुजे च यथाकालं(ङ्), कामान् धर्ममपीडयन् ।

वर्षपूगान् बहून् नृणा- मभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥ 36॥

मभिध्याताङ्+ घ्रिपल्लवः

सभी स्त्री-पुरुष जिनके चरणकमलों का ध्यान करते रहते हैं, वे ही भगवान श्रीराम बहुत वर्षों तक धर्म की मर्यादा का पालन करते हुए समयानुसार भोगों का उपभोग करते रहे।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

नवमस्कन्धे श्रीरामोपाख्याने एकादशोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥